जगद्गुरु श्रीगौरकिशोर दास बाबाजी महाराज

(शिक्षा समन्वित जीवनी)

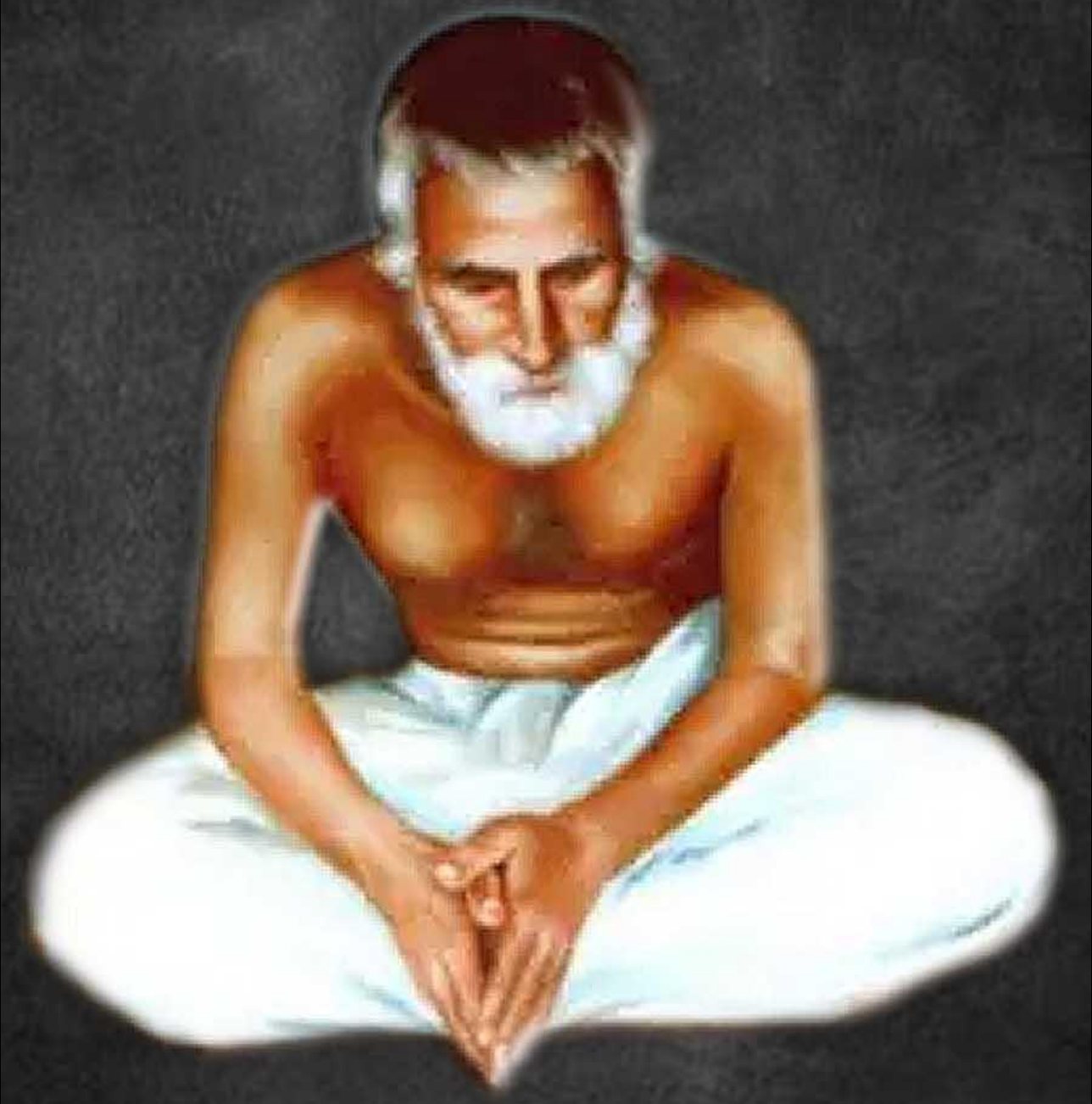

श्रील प्रभुपाद भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर जी की दिव्य लेखनी से संकलित

SGD

वास्तविक शुद्ध माधुकरी वृत्ति क्या है ?

श्रीलगुरुदेव

***साहा नामक एक व्यक्ति श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराज के लिए कुछ चावल अपनी इच्छा से भेजता था, इसी प्रकार अन्यान्य व्यक्ति भी श्रील बाबाजी महाराज की सेवा के लिए थोड़े बहुत चावल प्राय दे जाया करते। कुलिया नवद्वीप की रानी की धर्मशाला में एक कोठरी में यह सारे चावल जमा

करते थे।....साहा के चावल नियमित रूप से आने के प्राय दो महीनों बाद श्रील बाबाजी महाराज ने वह देखा और साहा के पास लोग भेजकर कहा कि वे और चावल न भेजें। यह जानकर उक्त साहा महोदय ने श्रील बाबाजी महाराज से मिलकर कहा— 'प्रभो, मेरा क्या अपराध हुआ है कि आपने मेरे से माधुकरी ग्रहण करना बन्द कर दिया ?' बाबाजी महाराज ने कहा,— “मेरे गुरु महाराज गुरु महाराज ने मुझे 'पालतू गाय' बनने से मना किया है, 'पालतू गाय' होने की अपेक्षा धर्म का सांड़ होना अधिक सुविधाजनक है।" श्रील बाबाजी महाराज की यह बात सुनकर एक

व्यक्ति ने 'पालतू गाय' शब्द का तात्पर्य जानना चाहा। बाबाजी महाराज ने 'पालतू गाय' की व्याख्या करते हुए कहा, — “गृहस्थ जिस गाय को अपनी देख-रेख में खिला - पिलाकर पालन पोषण और दोहन करता है, उसको अथवा हल खींचने वाली गाय को 'पालतू गाय' कहते हैं। जो एक व्यक्ति के द्रव्य ग्रहण कर अपनी उदर - पूर्ति (पेट भरना) करता है, वही 'पालतू गाय' के समान पालन करने वाले के अधीन हो जाता है। पालक (पालन करने वाला) यदि ऋणी हो जाए तो लेनदार साहूकार इस गाय को बेचकर उधार का पैसा वसूलते हैं। और धर्म का

साँड़ किसी व्यक्ति विशेष के अधिकार के अधीन नहीं रहता। वह इधर-उधर खाकर शरीर का पोषण करता है, कभी-कभी दो- एक मुक्के खाकर भी 'पालतू गाय' के समान आजीवन बँधकर नहीं रहता। जो नटखट गाय का पालन- पोषण करने वाले हैं, उन्हें भी बीच-बीच में गाय के नटखट स्वभाव से हुए नुकसान का हर्जाना भरना पड़ता है। निर्बन्ध में अथवा नियमित रूप से किसी से द्रव्यों की आशा रखना पालतू गाय बनने के समान है। आजकल बहुत लोगों ने 'माधुकरी' की बात सीख ली है। जो बाबाजी बनकर रहते हैं, वे माधुकरी ग्रहण करते हैं। किन्तु 'माधुकरी'

निर्गुण - वृत्ति है। जो शुद्ध रूप से माधुकरी ग्रहण करते हैं; उनकी श्रीकृष्ण में शरणागति प्रबल होती है, शरीर का बोध पूर्ण रूप से नष्ट हो जाता है, जिह्वा का लोभ, उपस्थ-लाम्पट्य और हमेशा संसार की बन्धन दशा में अधीन रहने की पिपासा दूर हो जाती है। जो लोग ब्रज में या नवद्वीप में रहकर भजन करने के छल से विषयी व्यक्तियों से तनखाह भोग करने वाले हैं, वे 'पालतू गाय' के समान हैं और जो लोग इधर-उधर चरते हुए अच्छा-अच्छा खाने की पिपासा में 'माधुकरी वृत्ति' ग्रहण करने का अभिनय करते हैं तो वे 'धर्म के साँड' हैं। भक्तिविनोद

ठाकुर ने जिस भजन की रचना की है, उसमें ही शुद्ध माधुकरी वृत्ति की बात कही हुई है—

कबे गौरवने, सुरधुनी - तटे,
'हा राधे हा कृष्ण' ब'ले।
काँदिया बेड़ाव देह सुख छाड़ि'
नाना - लता - तरु - तले ।।
(कबे) श्वपच - गृहेते, मागिया खाइव,
पिव सरस्वती - जल।
पुलिने पुलिने, गड़ागड़ि दिव,
करि' कृष्ण- कोलाहल ।।
(कबे) धामवासी जने, प्रणति करिया,
मागिव कृपार लेश ।

वैष्णव - चरण, रेणु गाय मारिव,

धरि' अवधूत वेश।

(कबे) गौर - बजवने, भेद ना हेरिव,

हइव बरज - वासी।

(तखन) धामेर स्वरूप,

स्फुरिवे नयने,

हइव राधार दासी ।।

अर्थात् अहो! ऐसा दिन कब आएगा, जब मैं समस्त प्रकार के शारीरिक सुखों का परित्यागकर नवद्वीप धाम में गंगाजी के किनारे हे राधे! हे कृष्ण! कहते हुए रोते-रोते लता और वृक्षों के नीचे भटकता

रहूँगा तथा चाण्डाल के घर में भी भिक्षा माँगकर खाऊँगा एवं सरस्वती का जल पानकर जीवन निर्वाह करूँगा। अहो ! कब मैं गंगा के किनारे किनारे जमीन में लोटते हुए "कृष्ण-कृष्ण" कहकर शोर मचाऊँगा तथा धामवासी लोगों को प्रणामकर उनसे कृपाकी मात्र एक बूँद भिक्षा मागूँगा एवं अवधूतवश धारण कर वैष्णवों की चरण रज अपने सारे शरीर में मलूँगा । अहो ! कब मैं गौड़वन (नवद्वीप) व वृन्दावन धाम में भेद न कर ब्रजवासी हो जाऊँगा, जिससे धाम का चिन्मय स्वरूप मेरे नयनों में स्फुरित होगा अर्थात् मैं दर्शन कर

पाऊँगा तथा मैं श्रीमति राधिकाजी की दासी हो पाऊँगा।

श्रीलगुरुदेव